ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-3* Issue-3*April- 2018
Innovation The Research Concept

सांस्कृतिक चेतना व विकास की वाहक भारतीय कला (एक विवेचनात्मक अध्ययन)

रामावतार मीना
सहायक अध्यापक,
चित्रकला विभाग,
शासकीय स्नातकोत्तर महा.,
टोंक, राजस्थान

सारांश

प्रत्येक देश, समाज एक विशिष्ट संस्कृति के लिए जाना जाता है। संस्कृति का अर्थ, जो समाज में एक निश्चित प्रकार का जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा देता हैं, जिसका उद्देश्य हमारे सामाजिक जीवन को परिष्कृत और पर्यावरण को शुद्ध और पवित्र बनाना है। कलाओं ने इस क्षेत्र में उत्कृष्टता से सहयोग दिया है, कलाऐं समाज–सुधार तथा देश की उन्नति में अत्यन्त सहायक रही है। विभिन्न काल खंडों के कला इतिहास को देखने से पता चलता है कि आधुनिक काल तक सांस्कृतिक चेतना व विकास की वाहक रही है भारतीय कला। किन्तु यह अध्ययन इस और हमारा ध्यान आकर्षित करता है। वर्तमान में क्या इस प्रकार का कला सृजन हो रहा है, क्या हमारी कलाकृतियाँ विशेष जन समुदाय को प्रभावित व चेतनामय बनाने में सक्षम हो पा रही है या नहीं। एक कलाकृति– कलाकृति की श्रेणी में रखनी योग्य है भी या नहीं। या वह चेतना, भाव व विशिष्ट सौंदर्य से विहिन कलाकृति है। इन सबके होते हुये भी क्या हमें कलाकृतियों के विशिष्ट पैमाने बनाने होंगे। आज समाज में चारों तरफ कलाकारों की भीड़ लगी हुई है। वे सिर्फ स्वयं के लिए कला निर्मित में सलंग्न है या खास वर्ग को तुष्ट करने व भौतिकता हांसिल करने के लिए कला कर्म में सलंग्न है। स्थिति बहुत उलझन पूर्ण हो चुकी है। वहीं आधुनिक काल में भौतिवादिता व पश्चिमीकरण के प्रभाव में सामाजिक चेतना व अर्न्तमन से दूर भी हुई है। अंग्रेजी औपनिवेश्कि शासन व वैश्वीकरण के कुप्रभाव ने भी कला की उपलब्धियों को समाप्त करने का प्रयास भी किया गया।

मुख्य शब्द : प्रेक्षक, समाज, कल्पना, धर्म, आर्थिक पहलु, प्रतिबिम्ब, साहित्य, मनौवेज्ञानिक प्रभाव, मानसिक प्रक्रिया (संवेदना), चेतन–अवचेतन, भगती, धार्मिक काल, बंगाल से समसामयिक कला, कलाकृतियां, वातावरण, बिम्ब–विधान, औधोगिक व भौतिकवाद, औपनिवेशिक, शासन, वर्तमान प्रमुख धारणाएँ, एवं विचार।

प्रस्तावना

उद्भव काल से ही मानव के मन में बिम्बों की आभासात्मक प्रतीति रही है। यह गुहा व भित्ति चित्रों से सहज ही साबित हो जाती है। प्रागैतिहासिक मानव ने गुफाओं और चट्टानों की भित्तियों पर अपनी मूक–भावनाओं को उकेरा। उस समय पशु को मारकर खाना तथा उसके बाद उल्लास में नृत्य–गायन आदि करना मनुष्य की दिनचर्या थी। अपने जीवन में सफलता पाने, भय को दूर रखने, अदृश्य शक्तियों की पूजा के लिए ज्यामितीय आकारों को सांकेतिक रूप में भी प्रयोग करता था और त्रिभुज, वृत, आयताकार, स्वस्तिक, षट्कोण, अंकों तथा रेखाओं आदि से अनेक प्रतीक चिन्हों को चित्रित कर निजात पाता था। जिसे कला द्वारा **'उपचार'** की संज्ञा से भी अभिहित किया जा सकता है।

चित्र–विद्या की सृष्टि मानवता के सौख्य एवं भावनात्मक सौन्दर्य का कारण सिद्ध हुई। उससे संसार में क्रूरता तथा निर्ममता की जगह 'समता' तथा 'सहृदयता' की स्थापना हुई। उसने मनुष्य में अनुरागप्रियता और सौन्दर्य–जिज्ञासा का विकास किया और कल्याण–मंगल–कामना में चित्र–विद्या का योग आज तक बना हुआ है। 4000 वर्ष पूर्व से लेकर ईसा से 3000 वर्ष पूर्व के मध्य चीन से लेकर मध्य एशिया तक 'सभ्यता' का जन्म हुआ। जिसे 'सिंधु घाटी सभ्यता' कहा गया। वहाँ का सामान्य जन–जीवन कला के प्रति अत्यधिक रूप से आसक्त था। 'हड़प्पा' और 'मोहनजोदड़ों' से प्राप्त काँसे की की तन्वंगी नर्तकी, प्रस्तर धड़, वृषभ और वह मुहर, जिस पर पशुओं के बीच त्रिशूलधारी

मानव पालथी मारे बैठा है, जो भारतीय मानव 'समाज' की कलाप्रियता के प्रमाण है। जिसमें मोहनजोदड़ों की कांस्यमयी नृत्यागना कलाकृति की कलात्मक 'काया' की विश्व के विद्वानों ने भूरी–भूरी प्रशंसा की है। आधुनिक कला मर्मज्ञ व विद्वानों ने तुलनात्मक अध्ययन कर यह बात साबित कर दी कि 'कला' इन सभ्यताओं का आर्थिक आधार भी रही है।

वैदिक युग का सामाजिक जीवन साहित्य और कला को साथ लेकर आगे बढ़ा। उस युग में संगीत, मूर्ति, स्थापत्य और चित्र आदि विधाऐं उत्कर्ष की ओर अग्रसर थी। ऋग्देव की प्राचीनतम् मंत्र–संहिता की एक ऋचा (1. 1.45) से ज्ञात होता है कि उस समय चमड़े पर चित्र अंकित किये जाते थे। अथर्ववेद के एक मंत्र (13.2.34) में सूर्य को देवों की चित्रित पतका (चित्रं देवनां केतुरनीकम्) कहा गया है। यह कथन उस युग की सुरूचि तथा सौन्दर्य–प्रियता को साबित करने के लिए पर्याप्त है, जिसमें कला की व्यापक–भाव–भूमि का निर्माण किया।

भारतीय कला एवं चित्रकला के उन्नत स्वरूप का काव्यात्मक पर्यालोचन वस्तुतः पुराणों में ही सर्वप्रथम देखने को मिलता है। शास्त्रीय व प्राविधिक (तकनीकी) दृष्टि से कला का प्रामाणिक विवेचन 'पुराणों' में दिया गया। 'विष्णु धर्मोन्तर पुराण' का 'चित्रसूत्र' इस विषय की प्रौढ़ रचना है। उत्तरोत्तर महाकाव्य काल में 'केश सज्जा', 'अंगराज', 'चित्र–विचित्र', 'वस्तुओं का व्यवहार', 'स्त्रियों के कपोलों पर पत्रावली का अंकन', 'राजप्रसादों', 'गृहों', 'रथों' तथा पशुओं की सज्जा, नगरों एवं उद्यानों की कलापूर्ण रचना और उत्सवों की विशद् चर्चाएँ तत्कालीन समाज की कला एवं कला द्वारा 'समाज' विशेष वस्तुतः व्यक्तियों के **सम्पूर्ण 'उपचार'** की सार्थकता को सिद्ध करती है।

बौद्धकालिक कला (50 ई. से 700 ई. तक) मध्यप्रदेश में साँची और भरहूत, दक्षिण में 'अमरावती' और नागार्जुनकोंडा तथा पश्चिम में 'कार्ले और भज' बौद्ध कला के प्रमुख उदाहरण हैं। पाल युगीन 'अष्टसाहस्त्रिका प्रज्ञापारमिता', 'पेन्जरक्षा और 'महामयूरी गण्डव्यूह' ताड़पत्रीय बौद्ध ग्रन्थ भी इस श्रृंखला में प्रमुख हैं। बौद्ध कला की महान् थाती का समृद्ध केन्द्र 'अजन्ता' रहा। जो महात्मा बुद्ध के जीवन की घटनाओं तथा जातक कथाओं पर आधारित है। पूर्व जन्म की कथाओं के चित्रण के माध्यम से उस समय के कलाकारों ने समाज के धार्मिक जीवन को उपचारित करने का प्रयास किया। उस समय अजन्ता के चित्र जीवन और संसार के लिए महत्वपूर्ण उपचार के रूप में साबित हुये। कई सांसारिक पक्षों का अंकन इस बात के साक्षी हैं। समाज एवं व्यक्तियों से सम्बंधित प्रमुख अव्यव्य– भय, आतंक, याचना, ग्लानि, शान्ति तथा आनन्द आदि भावों का इन चित्रों में पूर्ण रूपेण अंकन हुआ है। इसी के समानार्थी जैन धर्म व जैन धर्म से संबंधित ग्रंथ चित्रों, मूर्ति शिल्प, मंदिर स्थापत्य ने भी प्रकृति, मानव, धर्म, पर्यावरण, आर्थिक, समृद्धता आदि में उत्कृट सहयोग प्रदान किया। इन सभी से उस समय के समाज को सम्पूर्ण उपचारित करना ही इनका अंतिम लक्ष्य बन गया है। जैसे इस कार्य में ब्राह्मण (हिन्दू) धर्म भी पीछे नहीं रहा है।

जिसकी परिणति मध्यकाल के साहित्य एवं कला में दृष्टिगोचर होती है। इस समय हिन्दू देवालयों के साथ ही भक्ति एवं रितिकालीन ग्रंथ चित्र, जो राजस्थानी शैली, मुगल शैली, पहाड़ी शैलियों में अनगिनत संख्या में लिखें एवं चित्रित किये गये। इस समय सभी धर्म हिन्दू, मुस्लिम, जैन, ईसाई, सिक्ख आदि सभी अपने अपने धर्म के प्रति सचेत बने रहे और धर्म में व्याप्त बुराई व समाज के अनुकूल अपनी धार्मिक शिक्षाओं को प्रचार व प्रसार में लगे हुय जान पड़ते हैं। जिसमें कला ने अतुलनिय सहयोग दिया। मध्यकाल का यह समय कला द्वारा बड़े रूप में समाज का धार्मिक उपचार सिद्ध हुआ, जिसकी जड़े अभी तक अल्प मात्रा के अलावा कोई हिला भी नहीं सका।

उक्त विवेचनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि इससे विभिन्न आवश्यकताओं यथा वस्तु, सेवा, दार्शनिक, आध्यात्मिकता के साथ ही सौन्दर्य व आनन्द की पूर्ति कला के माध्यम से की जाती रही है। यह मध्यकाल में धार्मिक उन्नयन, प्रचार–प्रसार व राजा–महाराजाओं की दमित वासनाओं की भी पूर्ति करती रही है जिसके उत्कृष्ट उदाहरण मध्यप्रदेश स्थित खजुराहों के मंदिर शिल्प हैं।

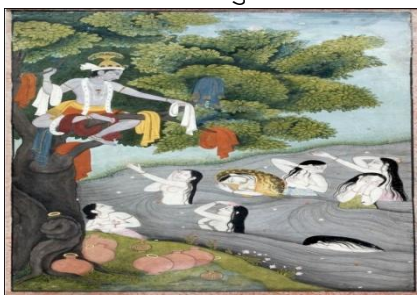

वही आधुनिक काल में भौतिकवादिता व पश्चिमीकरण के प्रभाव में सामाजिक चेतना व अर्न्तमन से दूर भी हुई। धर्म, दर्शन, साहित्य एवं आध्यात्म आदि मन की सृष्टि हैं, ये सब रचनाएँ मानव–मन की संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग हैं। वर्तमान में कला इनसे दूर होती नज़र आ रही है। अंग्रेजी औपनिवेशिक शासन व वैश्वीकरण के कु–प्रभाव ने कला की उत्कृष्ट उपलब्धियों को समाप्त करने का प्रयास भी किया गया। परिणामस्वरूप कुछ समय के लिए हमारी सृजनात्मकता व कल्पनाशिलता पंगु होने लगी थी। अन्ततः सतत एवं संपूर्ण विकास की वाहक

भारतीय कला की निजता व वैचारिक, दार्शनिक, धार्मिकता के साथ ही सामाजिक उपचार के रूप में वापिस इसकी प्रासंगिकता महसूस की गई। फलस्वरूप सन् 1905 में बंग–भंग विरोधी आंदोलन के साथ रचनात्मक गतिविधियाँ भी राष्ट्रीयता के लिए उद्वेल्वित हो उठी।

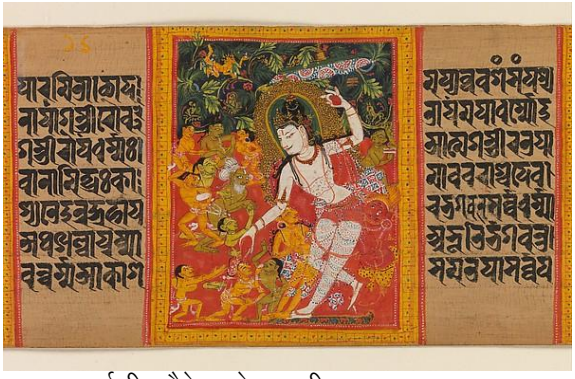

ई.बी. हैवेल ने अवनीन्द्रनाथ का कला रूझान राजपूत व मुग़ल कला की ओर खींचा। कलकत्ता में 1907 में ओरियंटल सोसायटी ऑफ आर्ट की स्थापना हुई और 1910 में आनन्द कुमार स्वामी की पुस्तक 'आर्ट एण्ड स्वदेशी' का मद्रास से प्रकाशन हुआ। जिसने भारतीय कला को अपने मूल आदर्शों की तरफ मोड़ा। जिसमें लिखा है कि 'यह हमारे राष्ट्रीय आंदोलन की कमजोरी है कि हम भारत से अधिक इंग्लैण्ड के उपनगरों को चाहते हैं'। 'स्वदेशी' एक राजनैतिक अस्त्र से अधिक हमारी कला और धर्म का आदर्श होना चाहिए.....भारत में कला विद्यालयों का मुख्य काम भारतीय परम्परा के बिखरे सूत्रों का संकलन व पुनसंचालन, भारतीय कलाचिंतन को राष्ट्रीय संस्कृति का अंग बनाना और हमारे दस्तकारों को भारतीय जनजीवन के विचारों और चेतना से जोड़ना है।' संक्षेप में सामाजिक चेतना व राष्ट्रीयता की भावना को जन सामान्य में कैसे विकसित हो, कला मर्मज्ञ जानते थे। देश में फैली–विदेशी ताकतों व उनके तार्किक विचार व सोच को भारतीयों के पक्ष में कला उपचार द्वारा कैसे किया जाये। अतः जिस समय राजनैतिक आंदोलन चल रहे थे उसी समय हमारे कलाकारों व कला समीक्षकों द्वारा कला आंदोलन चलाया और स्पष्ट किया कि 'यह कला आंदोलन नयी तरह से देखने, नयी तरह से किसी वस्तु व स्थितियों को आँकने से नहीं, मूलतः देशभक्त की तरह सोचने, समझने और काम करने की इच्छा से प्रेरित था। मैं मानता हूँ कि यह एक प्रकार से कला द्वारा **सामाजिक** व **राजनैतिक चेतना** उत्पन्न करने हेतु **उपचार** था। अवनीन्द्रनाथ की कला में कई दुनियाऐं हैं। 1906 ई. में 'स्वदेशी' आंदोलन के जोश में उन्होंने बंकिम चन्द्र की 'वन्देमातरम्' कविता से प्रेरित होकर 'भारत माता' की ऐसी छवि बनाई जो घर घर पहुँच गई।

स्वदेशी आंदोलन के समर्थकों ने इस चित्र का भरपूर लाभ उठाया और देश की राजनीति में स्वदेशी आंदोलन को समर्थन दिया। **यह कला द्वारा एक प्रकार से राजनैतिक उपचार ही था**। नन्दलाल बसु की कला में महात्मा गाँधी जी के प्रभाव से राष्ट्रीय भावना का उदय हुआ। कनु देसाई और रवि शंकर रावल आदि ने 'राष्ट्रप्रेम' को ही अपनी साधना का मुख्य विषय बनाये रखा। नन्दलाल वसु के स्वतंत्रता आंदोलन से संबंधित चित्रों में 'मंच की सजावट', 'सी.एफ.एन्ड्रूज', खान अब्दुल गफ्फार खां व 1930 में बनाया 'दाण्डी यात्रा' चित्र महत्वपूर्ण है। 1906 में असित कुमार हाल्दार ने 'मदर इण्डिया' नामक चित्र वाश पद्धत्ति में बनाया। चित्र देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि 'भारत माता' अंधेरे को चीरती हुयी, प्रकाश फैलाती हुयी, बादलों से प्रकट हो रही है। इसी क्रम में मुकुल डे का बनाया 1930 में 'गाँधीजी को चरखा चलाते हुए' चित्र महत्वपूर्ण है जो राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली में है। चित्रकार कनु देसाई ने 'प्रकाश की ओर'' नामक चित्र बनाया। जिसमें गाँधीजी को पीछे की ओर से चित्रित किया गया है। वे हाथ में छड़ी के लिए हुए प्रकाश की ओर बढ़ते दिखाए गये हैं। गोपाल घोष ने 'स्वतंत्रता का धागा' नामक चित्र जल रंगों में बनाया। चित्र में गाँधीजी को चरखा चलाते हुए दिखाया गया है। यद्यपि चित्र में चरखा नहीं है लेकिन गाँधीजी का हाथ ऐसी मुद्रा में है कि लगता है वे चरखा चला रहे हैं। रमेन्द्रनाथ चक्रवती द्वारा तेल रंगों में बनाया चित्र 'प्रार्थना की ओर' में गाँधीजी खड़े हुए हैं, शायद वह प्रार्थना करने जा रहे हैं। दिनेश शाह तो राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय भाग ले चुके हैं, उनकी कृतियों में अहिंसा, राष्ट्रप्रेम, धार्मिकता की सुन्दर अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। पुलिन बिहारी दत्त ने 'आजादी का गीत', विनायक मासौजी ने 'राष्ट्र ध्वज का जन्म', 'बापू का महाप्रयाण', धीरेन्द्र ब्रह्म ने 'गाँधीजी के जीवन के तीन अध्याय', सुशील सरकार ने 'यह देश मेरा है' चित्र बनायें।

''सुन्दरता ही दुनिया को बचा सकती है'', रूसी लेखक दोस्तोएवस्की के इस उद्धरण के अनेक अर्थ और संदर्भ हैं। राजा रवि वर्मा के चित्रों की दुनिया में जाकर

यह उद्धरण अक्सर याद आता है। अमृता शेरगील को भारतीय गरीबी पसंद आई। उनकी मानसिकता 'गरीबी' की व्याख्या कर रही थी वे सचमुच गरीबों की जिंदगी में कोई बुनियादी परिवर्तन देखना चाहती थी। वे यहाँ तक कहती थी कि ''अगर भारत में गरीब न होते तो मेरे लिए पेंट करने को क्या होता?''

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् अनेक कलाकार दूसरी दिशाओं की ओर बढ़े। उनमें सबसे प्रभावशाली कलाकार वे हैं, जिन्होंने देशकाल की सीमाओं को लाँघकर अपनी कला को सार्वदेशिक कला रूप दिया। इस वर्ग के चित्रकार बहुत बड़ी संख्या में हैं। विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में दुनिया में कहीं भी कुछ होता है तो परिवर्तन का एक नया दौर हर दिशा में प्रारंभ हो जाता है। आधुनिक भारतीय चित्रकला भी इससे प्रभावित हुई। आधुनिक चित्रकला के क्षेत्र में जो कुछ भी नवीन रचनाऐं हुई हैं, वे सब गतिशीलता का प्रतीक हैं। आज आधुनिक कला को समझने, उसकी बारीकियों में जाने और उसके योगदान को कला के विकास की दृष्टि से मूल्यांकन करने की आवश्यकता है, साथ ही जीवन से इसका सम्बंध जोड़ने की जरूरत है। ऐसा कार्य हमें यामिनी राय, हुसैन, कृष्ण खन्ना, के.जी. सुब्रमण्यन्, सतीश गुजराल सोमनाथ होरे, ए. रामचन्द्रन, तैयब मेहता व मनजीत बाबा आदि आधुनिक कलाकारों के कला कर्म में दिखाई पड़ता है। **ये सभी कला–साधक एक सर्जन डॉक्टर की भाँति समाज, देश व देश के बाहर संसार में मनुष्य जाति का ईलाज (उपचार) अपनी कलाकृतियों द्वारा कर रहें हैं।**

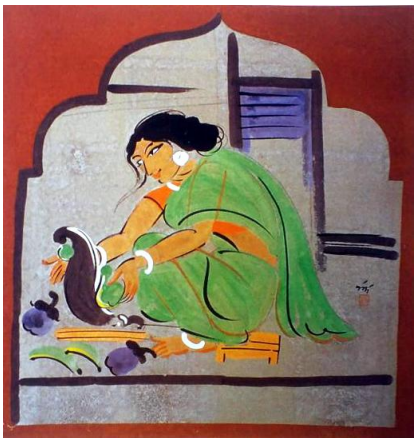

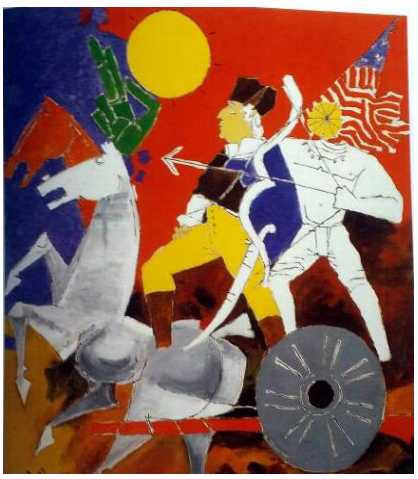

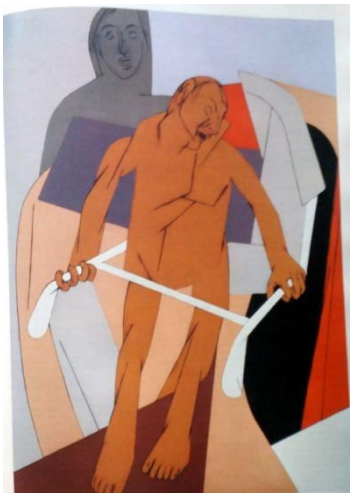

यामिनी राय ने माना कि मरलर उनकी कला सामाजिक चेतना का ही हिस्सा हो। सभी वर्गों के लोग खुद को उनकी कला से सहज ही जोड़ लेते हैं। जनमानस की विश्वास–परम्पराओं से उपज कर उनके रूपाकार भारतीय सँस्कृति के प्रतिक बन गये हैं। 1938 में रामकिंकर बैज ने 'संथाल परिवार' नामक बहुचर्चित मूर्तिशिल्प से आधुनिक कला को नई दिशा दी। उनकी इस शिल्पाकृति में 'संथाल परिवार' में गहरा आत्मविश्वास और जादुई गति है। वे नीरस लोगों की बजाय पसीना बहाने वाले लोगों को ही अपनी कला में जगह देते थे। हुसैन के सम्पूर्ण जीवन का प्रतीक जैसे 'नारी' पर केन्द्रित हो। जो अनेक प्रकार की पीड़ा सहती है। वह पीड़ा, वेदना और घुटन की प्रतीक हैं। उसमें असीम करूणा तथा प्रेम भी है। उनके चित्रों में जीवन के अन्य अन्धकार पूर्ण पक्षों के प्रतीक–केक्टस, मकड़ी, पीड़ा से कराहता 'अश्व' है। 'जमीन'को वे अपना सबसे अच्छा चित्र मानते है। जिसमें गहरी संवेदना है। उनके चित्रों में भारतीय जीवन के सपने और संघर्ष है। उनकी कला समाज का दर्पण है, बुराई चिन्तनीय विषय है। जिसको हुसैन ने समाज व देश के समक्ष प्रस्तुत किया। उनके बनाये घोड़े समाज की जड़ता को खत्म करते हुये समाज में एक नई ऊर्जा भरते हैं। ये जड़ता के विरूद्व संघर्ष का प्रतीक हैं। साथ ही गति और ऊर्जा के रहस्यमय प्रतीक भी। कृष्ण खन्ना, के. जी. सुब्रमण्यम्, सोमनाथ होरे, सतीश गुजराल, ए. रामचन्द्रन, तैयब मेहता, मनजीत बाबा आदि भी इसी श्रेणी के कलाकार है। जिन्होनें आज के सामाजिक, राजनैतिक व आर्थिक जीवन पर तीखी टिप्पणियां की हैं। सोमनाथ होरे कहते है कि ''मैं तस्वीरें नहीं बनाता हूँ। मैं जख्म बनाता हूँ।'' विभाजन, युद्ध, राजनैतिक दबाव आदि रक्त रंजित स्मृतियाँ इनकी कल्पना का हिस्सा बनी। के.जी. सुब्रमण्यन् ने अपनी कला में सामाजिक और राजनैतिक हिंसा का तीखा चित्रण किया। इसी प्रकार सतीश गुजराल की 1949 की एक चर्चित पेंटिग **'मातम' (मोर्निंग)** में विलाप, अवसाद और विभाजन की एक गहरी त्रासदी को चित्रित किया।

आधुनिक कलाकारों ने प्रकृति, परिस्थितियों और नियति को चुपचाप स्वीकार नहीं किया। उनका मानना है कि ''कला मनुष्य का उसकी नियति से बचाव करती है। इसी तरह राजस्थान से प्यार करने वाले ए. रामचन्द्रन की संवेदना को गहरा धक्का पोखरण में अणु–विस्फोट ने पहुँचाया। जिसके परिणामस्वरूप 1975 में **'न्यूक्लिर रागिनी'** चित्र श्रृंखला उन्होनें पेन्ट किया। प्रकृति की जगह क्या आणविक युद्ध की भँयकरता ले लेगी? इनका मानना है कि सुन्दरता इस दुनिया को बचाएगी। पिकासो की बहुचर्चित कलाकृति 'गर्वेनिका' ने दूसरा विश्व युद्ध रोक नहीं दिया था। पर कला की भाषा बदली व समाज के समक्ष युद्ध के वास्तविक परिणाम दिखायें। तैयब मेहता की पेन्टिग 'त्रिफलक' (राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली) चित्र भाषा की शर्तो पर खरा उतरता है और उसमें जो कलाकार हैं वे भारतीय जीवन के विराट रूप सामने लाते हैं। इस चित्र में जीवन भी है, मृत्यु भी है, वसंतोत्सव के रंग और दूसरी ओर हिंसक दुनिया के संदर्भ संकेत भी हैं। इस प्रकार के अनगिनत उदाहरण आधुनिक भारतीय चित्रकला में हमें मिलते है **जो भारतीय समाज की शल्य चिकित्सा करते नज़र आते हैं।**

निष्कर्षतः कला एक बेहतर दुनिया का सृजन करती है। फ्रायड का कथन '' कला एक महान् शासक और तुष्टिकारक चीज है, प्रत्येक कलाकृति का लक्ष्य जीवन में सुधार और जीवन के अभावों की क्षति पूर्ति है।'' विद्धानों ने कला को एक जादुई उपकरण के रूप में माना हैं। इस रूप ने कला को सामाजिक शक्ति के अर्जन का साध्य भी माना। अन्ततः कला सृष्टि का मूल आधार समाज है। वह समाज के प्रत्येक व्यक्ति की आधारभूत आवश्यकता को पूर्ण करने का उचित मार्ग दर्शाती है। **हरबर्ट रीड के अनुसार ''हमें (समाज को) कलाकार का कृतज्ञ होना चाहिऐ, कि उसने हमारे लिये हमारी ही समस्या का समाधान प्रस्तुत किया है। यह कलाकार के कार्य की, सामाजिक मान्यता को भी इंगित करती है।''**

निष्कर्ष

सतत् एवं सम्पूर्ण विकास की वाहक भारतीय कला की निजता व वैचारिक, दार्शनिक, धार्मिकता के साथ ही सामाजिक उपचार के रूप में वापिस इसकी प्रासंगिकता आज भी महसूस की जा रही है। इस पर गहन विचार व मनन की अब विशेष आवश्यकता है। कुछ विशिष्ट नियम कलाकृतियों हेतु बनाने की महत्ती आवश्यकता है। क्या इससे कलाकार की श्रृजनधर्मिता पर प्रभाव पड़ेगा। पड़ेगा तो कितना आदि विषयों पर शोध परक अध्ययन की आवश्यकता है। हमें यह भी देखना है कि कितने कलाकार समाज में व्याप्त बुराईयों को दूर करने हेतु उपचारात्मक कलाकृतियों के सृजन में सलंग्न है, सलंग्न है किन्तु कितने सफल है, क्या वास्तव में उनकी कलाकृतियाँ विशेष संदेश देने, मन में वैचारिक क्रांति पैदा करने व एक विशेष शान्त वातावरण में हमें ले जाने में सफल है। इन सब विषयों पर विशेष शोध आज की आवश्यकता जान पड़ती है। अन्त में कला का उद्देश्य सम्पूर्ण मानव समाज के उत्थान हेतु निर्माण करना ही हमारा लक्ष्य होना चाहिए। यह लेख कुछ ऐसे ही प्रश्नों को उजागर करने के साथ ही कुछ हल खोजने का प्रयास मात्र है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *हरबर्ट रीड – द मीनिंग ऑफ आर्ट ; पृ.सं. 261.*
2. *अर्न्स्ट फिशर – कला की जरूरत ; पृ.सं. 40.*
3. *अवधेश अमन – समकालीन कला, ल.क. अका ; पत्रिका–अंक 14, संपादकीय।*
4. *नीहार रंजन राय – भारतीय कला के आयाम ; पृ.सं. 146.*
5. *पं. जवाहर लाल नेहरू – संस्कृति के चार अध्याय–प्रस्तावना ; पृ.सं. 11.*
6. *गैरोला, वाचस्पति – भारतीय संस्कृति और कला ; पृ.सं. 44.*
7. *डॉ. प्रेमा मिश्रा – भारतीय सौन्दर्य शास्त्र एवं ललित कलायें ; कानपुर–2002.*
8. *डॉ. रीता प्रताप – भारतय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास ; रा.हि.ग्रं. अकादमी, जयपुर, 2015.*
9. *विनोद भारद्वाज – बृहद आधुनिक कला कोश ; दिल्ली–2015.*
10. *कृष्णनारायण कक्कड़ (सं.) – समकालीन कला संदर्भ तथा स्थिति ; ललित कला अकादमी, नई दिल्ली–1980.*
11. *समकालीन कला – ललित कला अकादमी की पत्रिका ; 1986/मई–1987, संख्या–7– 8.*
12. *आर्नल्ड हाउजर (अनुवादक–गोपाल प्रधान) – कला इतिहास का दर्शन ; ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली–2008.*
13. *प्रेमचन्द गोस्वामी – आधुनिक भारतीय चित्रकला के आधार स्तम्भ ; रा.हि.ग्रं.अ. जयपुर–1995.*
14. *नीलिमा वशिष्ठ – राजस्थान की मूर्तिकला परम्परा (रा.हि.ग्र.अ.) ; जयपुर–2001.*
15. *रामचन्द्र शुक्ल – कला तथा आधुनिक प्रवृत्तियाँ ; लखनऊ–1988.*